International Journal of Education and Science Research Review
IJESRR
E-ISSN 2348-6457
January - 2018, Volume-5, Issue-1 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

गाँधी जी के अंहिसा मानववाद का संक्षिप्त मूल्यांकन

डॉ0 मनोरमा राय,
विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
धर्मेन्द्र सिंह मैमोरियल कॉलिज, अटौला, मेरठ

सार
विजय का उन्माद और पराजय की निराशा से सदैव वे अपने आत्म विश्वास के बल पर चलते रहें और कर्म के फल को परमात्मा का प्रसाद मानते थे। गाँधी जी की धर्म भावना विभिन्न धर्मों के महान् सन्तों एवं उपदेशों से अनुप्रणित थी। गाँधी ने धर्म की व्याख्या करते हुए उद्गार व्यक्त किया था– 'धर्म से मेरा अभिप्राय औपचारिक रूढ़िगत धर्म से नहीं परन्तु इस धर्म से है जो सब धर्मों की बुनियाद है और उसमें अपने सृजनहार का साक्षात्कार कराता है।' गाँधी जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन स्थापित सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित करने के प्रयत्नों में होम किया। वे ऐसे समाज की स्थापना चाहते हैं, जो सत्य तथा अहिंसा पर आधारित हो जिसमें भय शोषण का स्थान न हो।

प्रस्तावना
गांधी ने मानव जीवन से सम्बन्धित हर सम्भव पक्ष पर विचार किया है। उनके इस विषद विचार की विशिष्टता यह है कि उनके विचार का केन्द्रीय पक्ष, जो किसी न किसी रूप से हर विचार के मूल में व्यक्त है, उनका 'ईश्वर विचार' है जो उनका 'सत्य' के मूल रूप का विचार भी है। य़द्यपि गांधी ने दर्शन शास्त्र का शास्त्रीय अध्ययन तो नहीं किया था अतः उनके लिये सर्वेशवर–वाद केवल निनेतेशवरवाद जैसे ढाँचे प्रासंगिक नहीं हैं। फिर भी अपनी सुविधा के अनुसार तथा मोटे तौर पर हम इतना ही कह सकते हैं कि गांधी का ईश्वर विचार वैष्णव मत के ईश्वर–वादी विचार जैसा है। यह भी सत्य है कि किसी–किसी स्थल पर गांधी के ईश्वर विवरण में अद्वैत मत के निर्गुण रूप के विवरण जैसी कुछ बात कही जाती है। किन्तु ऐसा इस कारण होता है कि गांधी को यह विश्वास है कि सगुण तथा निर्गुण का जो शास्त्रीय अन्तर है वह सामान्य आस्थावान तथा धार्मिक व्यक्ति के लिए एक प्रकार से अप्रासंगिक शास्त्रीय है।

'सत्य' क्या है? तार्किक संदर्भ में तो इसे निर्णयों के एक गुण के रूप में कल्पित किया गया है, किन्तु तत्त्वमीमांसीय विवेचन में इसका विवरण कुछ भिन्न प्रकार से दिया गया है, वहां 'सत्य' को 'सही ज्ञान' के रूप में समझा गया है, तथा 'सही ज्ञान' उसे ही माना गया है जो 'सत्' के अनुरूप हो। भारतीय तत्व दर्शन में 'सत्य' का एक विशेष विचार उपलब्ध है जहां 'सत्य' को 'स्वतः' प्रकाश माना गया, कहा गया है कि सत्य स्वतः अपने को व्यक्त करता रहता है। गांधी सत्य के इन सभी विवरणों के कुछ अंशों पर बल देते हैं, तथा 'सत्य' की अपनी अवधारणा में किसी न किसी रूप में, इन सबों का सम्मिलित भाव बनाते हैं, और इस रूप में सत्य को ईश्वर कहते हैं। वस्तुतः इस जटिल अवधारणा को रूप देने में वे मुख्यतः सत्य के सरलतम– सर्वप्रचलित भाव पर ही। अपने को आधृत कर लेते हैं। सामान्य प्रचलित प्रयोग में 'सत्य' एवं 'सत्' के भेद की प्रायः उपेक्षा ही होती है। गांधी तो दोनों के भेदों को एक प्रकार से समाप्त ही कर देते हैं क्योंकि 'सत्य' शब्द को वे 'सत्' शब्द से ही निकला हुआ समझते हैं। अतः गांधी के अनुसार 'सत्य' मात्र वैचारिक कोटि नहीं है, मात्र यह निर्णयों पर लगने वाला भाव नहीं है, यह वास्तविकता है, 'सत्' है।

गांधी के अनुसार जगत ईश्वर की अभिव्यक्ति है, सर्वव्यापी सत् का ही एक व्यक्त रूप है। उनके अनुसार जगत को वास्तविक मानने में व्यवहारिकता है। यदि जगत को हम वास्तविक मानते हैं, तो यह भी मानना पड़ता है कि इसी जगत में हमें जीना है, कार्य करना है। तब न तो जगत के किसी तत्व को अवास्तविक कहने की आवश्यकता रह जाती है, और न जीने के संकल्प के शिथिल होने की आवश्यकता रह जाती है। अब गांधी की यह अनुशंसा अर्थपूर्ण हो जाती है कि जीवन का अर्थ, है, जगत में, प्राकृतिक शक्तियों के मध्य जीना। किन्तु वास्तविक होते हुए भी जगत सीमित है। यह सीमित है क्योंकि यह असीम नहीं हो सकता। यह असीम इस कारण नहीं हो सकता क्योंकि दो असीम तो हो ही नहीं सकते। ईश्वर असीम है, उसकी सृष्टि ससीम ही हो सकती है। महात्मा गांधी के अनुसार अपनी अपूर्णता से सतत् उपर उठने का जो मानव के द्वारा प्रयत्न होता है, वही तो इस बात का प्रमाण है कि जगत सीमित एवं अपूर्ण है।

तत्व मीमांसीय दृष्टि से गांधी 'एकवादी' है, अतः वे मानते हैं कि जिन वास्तविकताओं की हमें अनुभूति होती है– जैसे जगत या मानव वे भी किसी न किसी रूप में ईश्वरीय ही हैं। मानव भी ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है, अतः मानव के सभी

Copyright@ijesrr.org

पक्ष– शारीरिक, भौतिक, आध्यात्मिक– सभी ईश्वरीय अभिव्यक्ति हैं। गांधी यह भी कहते हैं कि मानव का मूल स्वरूप वही हो सकता है जो ईश्वरत्व के अधिक निकट हो तथा जिसके कारण जीवन के अन्य पक्षों में भी ईश्वरत्व का अंश आ जाता हो। ईश्वरीय अंश अनेक रूपों में व्यक्त हो सकता है। विवेकशक्ति, अन्तरात्मा की आवाज, इच्छाशक्ति–ये सभी इसी के रूप हों। गांधी का विश्वास था कि यदि इस ईश्वरीय अंश का सदुपयोग होता रहे तो मनुष्य धरती पर स्वर्ग उतार सकता है। शायद गांधी ने अपने इसी विश्वास पर 'रामराज्य' की कल्पना की थी।

गांधी का अंहिसात्मक मानववाद

सच पूछा जाय तो गांधी की समस्त विचारधारा दो केन्द्रीय 'भाव–स्रोतों', से ही पनपी है। एक भाव है 'सत्य' तथा दूसरा है 'अहिंसा'। दोनों भावों को वे एक विशेष अर्थ में 'अभिन्न' भी कहते हैं, क्योंकि एक का विचार अनिवार्यतः दूसरे तक ले ही जाता है। उनकी स्वीकारोक्ति है कि सत्य की तलाश में उन्हें 'अहिंसा' का विचार भी प्राप्त हो गया। प्रथमतः हम यह समझने का प्रयास करें कि गांधी की दृष्टि में इस शब्द– 'अहिंसा' का अर्थ क्या है। ऐसा नहीं है कि गांधी ने इस शब्द का प्रयोग सर्वधा विशिष्ट अर्थ में किया हो जो इसके प्राचलित साहचर्यों से सर्वथा भिन्न है। फिर भी गांधी ने कुछ ऐसी बातों पर बल दिया है, जिन पर सामान्यतः उतना बल नहीं दिया जाता। इसी कारण गांधी का 'अहिंसा' शब्द अपने ढंग से विशिष्ट बन जाता है, जो इसके प्रचलित अर्थों के समान होते हुए भी गांधी के अर्थ में अहिंसा कहा जाने लगा है।

गांधी के प्रयोग में अहिंसा शब्द का भावात्मक तथा निषेधात्मक दोनों प्रकार का अर्थ प्रकाश में आता है। गांधी के अनुसार इसका भावात्मक अर्थ अधिक मौलिक है क्योंकि यह अहिंसा के मूल रूप को व्यक्त करता है, तथा एक दृष्टि से निषेधात्मक अर्थ को भी अपने में समाविष्ट करता है।

अहिंसा का सरलतम अर्थ है 'हत्या नहीं करना'। इसी दृष्टि से अहिंसा का अर्थ कभी–कभी इस रूप में भी व्यक्त होता है कि यह किसी को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुंचाना है, किसी को किसी प्रकार की क्षति नहीं देनी है। तो अहिंसा के अर्थ की प्रारम्भिक समझ तो यही है कि वह हिंसा का विपरीत है। परन्तु गांधी के अनुसार हिंसा के अन्तर्गत हत्या, किसी को किसी प्रकार की पीड़ा देना, किसी को क्षति या हानि पहुंचाना– ये सब आ अवश्य जाते हैं, किन्तु ये अपने में हिंसा नहीं हैं। हिंसा को हिंसा होने के लिये इसके पीछे की मानसिकता ही प्रधान है। यदि प्राण लेना या पीड़ा पहुँचाना– क्रोध से, स्वार्थ से, ईर्ष्या से या जान–बूझकर किया गया हो– तो वह हिंसा हैं। इन सबों का मन, बचन, कर्म से पूर्ण त्याग ही अहिंसा है।

महात्मा गांधी अपने अहिंसात्मक विचारों में जैन–धर्म के करीब तो नजर आते हैं– लेकिन कई अर्थों में ये अलग भी है। जैन धर्म में अहिंसा की अनुशंसा बड़े ही कठोर ढंग से की गई है। यहाँ तो किसी के प्रति बुरे विचार का आना ही हिंसा है। जैन धर्म में अहिंसा के पालन में कहा गया है कि इसका पालन मन में, बचन में तथा कर्म में– तीनों स्तरों पर होना चाहिए। इन तीनों स्तरों में अन्य से हिंसा करना तथा हिंसा होने देना– सभी हिंसा है। किसी को गाली देना हिंसा है। यहां गांधी को यह अवगति है कि सामान्य जीवन में सामान्य मनुष्यों के लिये अहिंसा का इतने कठोर रूप में पालन न तो व्यवहारिक है और न ही सम्भव है।

यहां हम देखते हैं कि इस विषय पर गांधी के विचार बड़े ही स्पष्ट हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि यदि मेरे बच्चे को 'रैबी' हो जाये, तथा उपचार के सभी विकल्प समाप्त हो जायें, तो उस बच्चे को उसके भयानक कष्ट से मुक्त होने के लिये भाग्य के सहारे छोड़ देना ठीक नहीं है, बल्कि उस समय हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम उसका प्राणान्त कर दें। उनका कहना है कि भाग्यवादिता की– भाग्य पर आश्रित होने कीएक सीमा होती है। यदि हम उसे कष्ट से मुक्ति दिला सकते हैं तो उसे कष्ट भोगने के लिये भाग्य के सहारे छोड़ना उचित नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधी के अनुसार कुछ विशेष परिस्थितियों में प्राण लेना अनुशंसित है। उपर्युक्त उदाहरणों में प्राण नहीं लेना ही क्रूरता है, क्योंकि वहां उसे जीवित रखकर हम उसे भयानक कष्ट दे रहे हैं। यहां प्राण लेना क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष या किसी प्रकार के मन के मैल से प्रेरित नहीं हैं, बल्कि एक प्रकार की करूणा अथवा दया का ही भाव है।

किन्तु यह तो अहिंसा का निषेधात्मक आयाम है, अहिंसा में क्या नहीं रहता– इसका संकेत देता है। गांधी के लिये अहिंसा का भावात्मक पक्ष अधिक मौलिक तथा महत्वपूर्ण है। उनके लिये अहिंसा का अर्थ मात्र हिंसा का त्याग नहीं है, इसके अन्तर्गत कुछ भावात्मक लक्षण तथा मनोवृत्तियां आती हैं। अहिंसा के भावात्मक पक्ष को स्पष्ट करने के लिए गांधी

एक मान्यता, एक विश्वास के साथ अग्रसर होते हैं। उनका यह विश्वास है कि 'मानव' के 'मानवीयता' के एक मूल एवं अनिवार्य लक्षणों में अहिंसा है। इसका यह अर्थ नहीं कि 'हिंसा' का जीवन में कोई स्थान नहीं है। 'हिंसा' तो जीवन में होती ही है, अपने अस्तित्व को बचाए रखने के प्रयत्न में भी कुछ हिंसा हो जाती है, इसे स्वीकारते हुए भी गांधी कहते हैं कि 'अहिंसा' मानव–जाति के जीवन का एक मूल नियम है। इसकी एक पहचान तो यह है कि 'हिंसा' के द्वारा जो उपलब्धियां होती हैं, वे टिकाऊ नहीं होते। हिंसा पर किसी सर्जनात्मकता को शाश्वत रूप में स्थापित नहीं किया जा सकता। गांधी के अनुसार इतिहास इस बात का साक्षी है कि यदि शुभ उद्देश्य तथा कल्याण के अभिप्राय से भी हिंसा के प्रयोग से अत्याचारी को हटाया गया है, तो उस हिंसा के प्रयोग के कारण वे भी स्वयं उन्हीं कुरीतियों के शिकार हो गए जिन्हें दूर करने के लिए हिंसा का सहारा लिया था।

मनुष्य में अहिंसामूलक स्वरूप अधिक स्पष्ट है, क्योंकि मनुष्य शरीर तथा आत्मा दोनों हैं। शरीर भौतिक बल तथा शक्ति का सूचक हो सकता है, इसके चलते मनुष्य कभी–कभी हिंसात्मक क्रिया भी कर सकता है। किन्तु उसका मूल स्वरूप तो आत्म–रूप है, और अपने इस आध्यात्मिक रूप में मनुष्य स्वभावतः अहिंसक है। इस बात का एक प्रमाण तो यही है कि शरीर तथा शारीरिक अवयवों को आघात पहुंचाया जा सकता है, आत्मा पर आघात सम्भव नहीं है। इसी कारण गांधी का कहना है कि हिंसा मानव के मूल रूप का अंश नहीं, वह उसकी अस्मिता का लक्षण है। जैसे ही उसकी आध्यात्मिकता जागती है, उसका अहिंसक रूप प्रकाश में आ जाता है।

गांधी का कहना है कि अहिंसा का भावात्मक स्वरूप वस्तुतः 'प्रेम' है। प्रेम एक आन्तरिक एकता की भावना है। प्रेम में अपने 'प्रिय' से तादात्मया स्थापित होता है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब हम विचलित करने वाली मानसिक वृत्तियों से अपने को पृथक कर सकें। अतः प्रेम का अर्थ ही है– क्रोध, बदले की भावना, मनोमालिन्य, द्वेष आदि से मन को मुक्त रखना। गांधी के अनुसार प्रेम वह शक्ति है जो मन को पूर्णतया स्वच्छ कर देती है तथा व्यक्ति को श्रेष्ठतर बनाती है। इसी कारण वे 'प्रेम' के अन्तर्गत– दया, क्षमा, करूणा, सहानुभूति, परकल्याण, आदि जैसे उच्चतर भावनाओं को समाविष्ट करते हैं। घृणा, ईर्ष्या सरल है जबकि प्रेम के लिये आन्तरिक सशक्तता की आवश्यकता होती है और 'प्रेम' तो तब और कठिन हो जाता है जब हमें कहा जाता है कि जो तुम्हारे विरोधी हैं उनसे भी प्रेम करो। यही कारण है कि प्रेम के लिये अधिक शक्ति की– बल की आवश्यकता होती है। अतः गांधी के अनुसार प्रेम निर्बलों के लिये नहीं है। इसी क्रम में गांधी का कहना है कि हिंसा निर्बलता का सूचक है। निर्बल भयभीत होता है जिससे बचने के लिये वह हिंसा का सहारा लेता है। हिंसा तो हर व्यक्ति कर सकता है लेकिन अहिंसा का पालन वही कर सकता है जिसने भय को जीत लिया है।

इस प्रकार गांधी के अनुसार अहिंसा कर्म की प्रेरणा हो। यह उदासीनता या निष्क्रियता की मनोवृत्ति नहीं है, यह ठीक है कि अहिंसा की जड़े अन्तर में रहती हैं, किन्तु वे वाह्य कर्मों को प्रेरित करने के स्रोत हैं। अहिंसा कुछ क्षणों में सम्पादित हो गया कर्म नहीं है, यह तो एक सतत् प्रवाह है। अहिंसा का पालक वस्तुतः हर क्षण अहिंसा का पालन करता है, क्योंकि इसका पालन सतत् संकल्प, चिंतन तथा कर्मों के द्वारा होता है। यह ठीक है कि इसके पालन में असीम धैर्य की आवश्यकता होती है, किन्तु धैर्य निष्क्रियता नहीं है। धैर्य तो आन्तरिक संकल्प तथा सतत् प्रयत्न का सूचक है। धैर्य आततायी को अवसर प्रदान करता है कि वह वास्तविकता को समझे तथा शुभ को पहचान सके और अपनी भूल सुधार सके।

इसी कारण गांधी कहते हैं कि अहिंसा में बलिदान तथा कष्ट तो निहित होता ही है। प्रेम के साथ बलिदान–भावना अनिवार्य रूप से जुड़ी होती है। 'प्रेम' अपने से परे जाना है, 'स्व' से उपर उठना है। अतः वही प्रेम कर सकता है जो निःस्वार्थ बन सकता है, जो अब पाना नहीं चाहता बल्कि 'देने' का इच्छुक है। इस प्रकार के कष्ट, बलिदान, धैर्य, क्षमा आदि जीवन के संघर्षों में सही ढंग से सफल होने के निश्चित साधन हैं। यदि हम धैर्य पूर्वक आततायी के विरूद्ध अपना प्रतिवाद व्यक्त करते हुए कष्ट झेलते रहें तो हम उसके क्रोध या द्वेष को ठंडा करने का अवसर दे रहे हैं। परन्तु इस क्रम में यह विश्वास मजबूत होना चाहिये कि आततायी भी 'मानव' है और उसके अन्दर भी अनिवार्य रूप से शुभत्व का वास है। बिना इस भावना अथवा विश्वास के सारा कष्ट विफल हो जायेगा। गांधी का कहना है कि अहिंसा का पालन करने वाला कभी नहीं झुकता, विरोधी को ही झुकना पड़ता है। वह तो क्षमाशीलता की पराकाष्ठा है, तथा उसके असीम प्रेम एवं क्षमाशीलता के कारण अन्ततः आततायी को अपने किए पर शर्म आती है, फलतः वह अपने भूल को सुधारना प्रारम्भ कर देता है।

January - 2018, Volume-5, Issue-1 E-ISSN 2348-6457 P-ISSN 2349-1817

www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

गांधी जी के अनुसार इस प्रकार की अहिंसा के पालन का एक महत्वपूर्ण तथा प्रमुख शर्त और है। अहिंसा का पालन तब तक सम्भव नहीं है, जब तक ईश्वर में अटूट आस्था न हो। अहिंसा के पालन के लिये जिस असीम शक्ति की आवश्यकता होती है, वह तभी उत्पन्न हो सकती है जब ईश्वर में पूर्णरूप से सक्रिय, सजीव तथा अटूट आस्था हो। इसी आस्था के आधार पर ही हर व्यक्ति अन्य को 'अपना' समझ सकेगा, मानव मात्र के ऐक्य में विश्वास कर सकेगा। इस प्रकार 'ईश्वर में आस्था', 'मानव के प्रति प्रेम' में परिणत हो जाता है। ऐसे ही प्रेम से अहिंसा का पालन सम्भव है। मानव मात्र की एकता एवं कल्याण की अनुमति में मानवमात्र के लिये एक स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न होगा जिसका आधार ईश्वर में अटूट आस्था होगी। यहां गांधी को यह भी अवगति है, कि सत्य तथा अहिंसा का सैद्धान्तिक विवेचन व्यर्थ है, यदि व्यवहार में इनके पालन के ढंग का निर्धारण न हो। इसी अवगति के अनुरूप उन्होंने सत्य पर किये अपने विभिन्न प्रयोगों के आधार पर अहिंसा के पालन के ढंग को विकसित किया, तथा उसे उन्होंने 'सत्याग्रह' कहा।

निष्कर्ष

गांधी जी के अनुसार सत्याग्रह– हिंसा अत्याचार तथा अन्याय के विरूद्ध शक्ति रूप है। वस्तुतः हर प्रकार के अत्याचार, अन्याय तथा हिंसा भी इसी कारण होते हैं कि सत्य की उपेक्षा हो जाती है। सत्य का त्याग ही इनके उत्पन्न होने का कारण है। अतः यदि हम हिंसा, अन्याय आदि का सामना हिंसा–अन्याय से ही करते हैं, तो हम भी असत्य का ही साथ दे रहे हैं। इनके सामना करने का समर्थ एवं उपयुक्त ढंग तो वही हो सकता है जो इनके समाप्त हो जाने का उपकरण बन जाय। हिंसा, हिंसा से बढ़ती है, अन्याय, अन्याय से बढ़ता है। यदि इन्हें समाप्त करना है तो इनका ढंग नहीं सत्य का ढंग अपनाना आवश्यक है। यही सत्याग्रह की सार्थकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, आर0 ए0 : "तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, मूल्यमीमांसा एवं शिक्षा", सूर्या पब्लिकेशन, निकट राजकीय इण्टर कॉलिज,मेरठ–250001, 2014
2. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार : द्वितीय संस्करण, "शिक्षा दर्शन", एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटरर्स, बी–2,विशाल एन्क्लेव,नईदिल्ली–110027, 2011
3. शर्मा, आर0ए0 : "शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया", आर0लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कॉलिज, मेरठ–250001, 2012
4. तिवारी, केदारनाथ : पंचम् संस्करण, "तत्व मीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा", मोतीलाल बनारसीदास, 41,यू0ए0बंग्ला रोड,जवाहरनगर, दिल्ली–110077, 2014
5. डा0अर्जुन मिश्र दर्शन की मूल धाराएँ, प्रकाशक, मध्यपदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2012
6. शर्मा चन्द्रधर, पाश्चात्य दर्शन, प्रकाशक, नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, जैन, दिल्ली 2010
7. शर्मा चन्द्रधर, भारतीय दर्शन, आलोचना और अनुशीलन, प्रकाशक, नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, जैन, दिल्ली, 2012
8. जार्ज टामस वहाइट पैट्रिक दर्शनशास्त्र का परिचय, प्रकाशक, हरियाणा साहित्य अकादमी,चण्डीगढ़, 2005
9. डेल कारनेगी लोक व्यवहार, प्रकाशक, मंजुल पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., 2006
10. प्रकाश दया रस्तौगी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, प्रकाशक, साधना प्रकाशन मेरठ, 2014
11. लाल बसन्त, समकालीन पाश्चात्य दर्शन, प्रकाशक, नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल जैन बनारसीदास, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2016